Gyanvividha, Vol.-2; Issue-4 (Oct.-Dec.) 2025 : PP-327-334

ज्ञानविविधा

कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की सहकर्मी-समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका

ISSN : 3048-4537(Online)
3049-2327(Print)
IIFS Impact Factor-2.25
Vol.-2; Issue-4 (Oct.-Dec.) 2025
Page No.-327-334
©2025 Gyanvividha
https://journal.gyanvividha.com
Author's :

मुकेश कुमार

(अनुसंधित्सु : विद्यावाचस्पति) हिंदी विभाग, हिमाचल प्रदेश, विश्वविद्यालय, समरहिल, शिमला–171005 (हि. प्र.).

Corresponding Author :

मुकेश कुमार

(अनुसंधित्सु : विद्यावाचस्पति) हिंदी विभाग, हिमाचल प्रदेश, विश्वविद्यालय, समरहिल, शिमला–171005 (हि. प्र.).

समकालीन हिंदी कविता में बाल मनोविज्ञान

शोध सारांश : अंतर्वस्तु के प्रति प्रतिबद्ध अंतर्दृष्टि एवं बोध का निष्कर्षण ही समकालीन हिंदी कविता का केंद्रीय भाव है, जहाँ समय की विसंगति का मानक रूप भी सक्रिय रहता है और समाज की विडंबना का मानदंड भी उपस्थित रहता है। समकालीन वैसे भी समय से हस्तक्षेप करने की दृष्टि देता है, जहाँ वैश्विक संस्कृति के प्रभाव एवं दबाव में आम जनता व्यथित व अभिशापित होती जा रही है और मूल्य विघटित होते जा रहे हैं। समकालीन हिंदी कविता का दृष्टिबोध केवल वर्तमानकालिक परिवेश से ही संदर्भित नहीं होता है, बल्कि अतीत के परिदृश्य से संबद्ध होते हुए भविष्योन्मुखी भी होता है, जहाँ वर्तमान समय की शिनाख्त भी होती है और भविष्य के प्रति भी नवीनतम सरोकार की स्थापना की जाती है। समकालीन मुख्यत: प्रवृत्ति का विशेषण सूचक है, जिसकी परिधि में काल-सापेक्ष संवेदना की सप्रसंग व्याख्याएँ भी होती हैं और समाज की बहुबृहत् विवरणिकाएँ भी संदर्भ सहित होती हैं। समकालीन हिंदी कविता का परिवेश एवं संवेदना का स्वरूप विस्तारित है, जिसमें बाल विमर्श भी एक चर्चित संदर्भ है। बाल विमर्श मुख्य रूप से कविता का ही केंद्रीय पक्ष नहीं है बल्कि समकालीन जीवन संदर्भ का प्राथमिक मुद्दा भी है। बाल जीवन की समस्याएँ, संवेदनाएँ, संभावनाएँ और चिंताएँ न केवल समय एवं समाज की परिधि की मौलिकता दर्शाता है, बल्कि चिंतन एवं अंतर्दृष्टि की यथार्थधर्मिता भी प्रत्यक्ष कराता है। समकालीन एक दृष्टिकोण है। एक बोध है अथवा समय के सच एवं विकृत सौंदर्य का संवेदित तरीके से अभिव्यक्तीकरण है। समकालीन वैसे भी वर्तमान जीवन के बहुविकल्पित संदर्भसूची तथा जीवन पद्धति की जीवटता एवं जटिलता की प्रसंगसहित व्याख्याएँ करती हैं और चेतना के लिए बृहत् पृष्ठभूमि की संरचना करती है। समकालीन केवल समसामयिक संदर्भ का ही नाम नहीं है, बल्कि वर्तमान की यथास्थिति के साथ भविष्य की प्रगतिशील वैचारिक दृष्टि भी है।

बीज शब्द : बाल मनोविज्ञान, संवेदना, बाल श्रम एवं आजीविका,

सरोकार एवं जीवन मूल्य, डिजिटलीकरण।

जैसे-जैसे समय बदल रहा है, वैसे-वैसे संवेदना में भी बदलाव होने लगा है और जीवन के स्थायी मूल्य निरंतर घृणा, विद्वेष, अंतर्द्वंद्व, कलह, भ्रम एवं प्रतिस्पर्धा में बदलते जा रहे हैं। विघटित जीवन मूल्य के कारण मनुष्य का दूसरे के प्रति दृष्टि विधान बदल जाता है और निजता हावी हो जाती है, जिसके कारण बोध एवं वृत्ति में प्रतिकूल असर पड़ता है। मंगलेश डबराल की **'पैदल बच्चे स्कूल'** कविता बाल जिंदगी का संवेद्य पक्ष यथार्थ तरीके से चित्रित करती है, जहाँ दैनिक जीवन की तमाम क्रियाविधि एवं किलकारियाँ मौजूद हैं। स्कूल जाने वाले बच्चे न केवल शरारती होते हैं, बल्कि किसी भी तरह के दबाव से मुक्त होते हैं और स्वच्छंद जीवन यापन करते हैं, जहाँ केवल मस्ती का खुमार अधिक होता है और चिंताएँ बेहद अल्प होती हैं-

"पैदल जानेवाले बच्चों का कोई भरोसा नहीं
वे घर से जल्दी चल पड़ते हैं
और स्कूल पहुँचते हैं अक्सर देर से"[1]

यह **'घर से जल्दी'** जाने की क्रिया और 'स्कूल पहुँचते हैं अक्सर देर से' तक के अंतराल में केवल धींगामस्ती ही होती है, जहाँ किसी तरह की कोई न तो फ़िक्र होती है और न ही किसी तरह की कोई चिंता होती है, इसलिए खेलते-खेलते- **"रास्ते में गंदी हो जाती हैं उनकी पोशाक**
जिन्हें संभालते हुए वे भागते हैं"[2]

इस भागमभाग में न किसी तरह की हड़बड़ी है और न ही किसी तरह की त्वरित प्रतिक्रिया का आभास है, इसलिए संतुलन एवं संतुष्टि के बीच केवल 'पोशाक' ही गंदी होती है, न की मन की निश्छलता में किसी तरह का दाग लगता है। बाजारवाद के समय में जहाँ प्रत्येक वस्तुएँ निश्चित कीमत पर बेची एवं खरीदी जा रही हैं, वहाँ बाल मन की स्मृति एवं स्वप्न में किसी भी तरह की संवेदना के भाव का संरक्षण कर पाना मुश्किल होता जा रहा है, क्योंकि-

"पैदल बच्चों के पास छिपाने के लिए कुछ नहीं है
किताबों के बीच तितलियाँ नहीं
जूते भी नहीं जिन्हें वे रख सकें
झाड़ी के पीछे"[3]

'किताबों के बीच तितलियाँ नहीं' होना चंचल मन एवं मस्तिष्क में हीनता बोध का संचार करता है, जिसकी छूट में न केवल अप-संस्कृति का भान होता है, बल्कि भूगोल एवं भाव की समाप्ति का आभास भी होता है, इसलिए बच्चों के लिए बड़े स्तर पर 'तितलियाँ' और 'जूते' सुरक्षित करने का रिक्तस्थान होना चाहिए, बेशक-

"कभी-कभी उन्हें देखा गया है
कोमल मानवीय भावनाओं के विरोध में
कुछ शब्द लिखते हुए।"[4]

'कोमल मानवीय भावनाओं के विरोध में कुछ शब्द' लिखना शुभ नहीं है, परंतु विपथित समय में संकीर्ण दृष्टि के कारण प्रतिकूलता या नकारात्मक तत्त्व का ही प्रभाव अधिक बढ़ता जा रहा है, जिससे न ती बाल मन बच पा रहा है और न ही बाल तन बच पा रहा है।

लोकप्रियतावाद, सत्ता-संस्कृति, वैश्वीकरण और डिजिटलीकरण की क्रान्ति ने मनुष्य के अस्तित्व का स्वरुप लघु से लघुत्तर कर दिया है और यंत्रीकरण ने जीवन की तमान भाव-सारणी का विघटन करके चिड़चिड़ापन और अंतर्द्वंद्व जैसे तत्त्व का प्रसार किया है, जिसके कारण निजी एवं सामाजिक जीवन का स्तर, संबंध व सरोकार खंडित हो रहा है। अरुण कमल की **'अहिंसा और भीख माँगते बच्चे'** कविता मानवतावाद के बीच जीवन के सार का प्रतिबिंबन

है, जहाँ एक तरह कर्म की प्रबलता है और दूसरी तरफ धर्म की पाबंदी है अर्थात् एक तरफ जीवन का ज्ञान बोध है और दूसरी तरफ जीवन का यथार्थ स्पंदन है। जैसे-

"मंदिर के बाहर खड़े हैं भिखमंगे, भूखे नंगे बच्चे
जैसे ही अन्दर से शांत पवित्र हो बाहर आप रखते हैं कदम
कि बिल्कुल चील की तरह झपट्टा मारते हैं बच्चे–"[5]

समाज का वीभत्स यथार्थ यह है कि भारत में असंख्य बालक एवं बालिकाएँ भीख माँगते हुए चौराहे पर या सड़क किनारे दिखाई देते हैं। यह हाशियाकृत जीवन जीते हैं और समाज में अवांछित माने जाते हैं तथा बहिष्कृत किए जाते हैं। यह ज्ञान के विपक्ष में सामाजिक जीवन की ही आहुति का संकेत है।

जैसे समाज के बुनियादी मूल्य तत्त्व में बदलाव आता है, वैसे ही सत्ता, धर्म एवं संस्कृति के प्रतिपक्ष में भी नित नवीन मूल्य बोध सम्मिलित एवं समन्वित होने लगते हैं। मूल्य के घटने-बढ़ने तथा टूटने से मनुष्य का जीवन स्तर भी बदल जाता है और समसामयिक परिवेश भी प्रतिकृत होने लगता है। कुमार विकल की **'खौफ़नाक समय में बच्चे'** कविता बाल मन की निश्चलता एवं निश्छलता का सौंदर्यीकरण करती हुई सवाल एवं जवाब के मध्य अवस्थित हो जाती है और समाज के प्रति अपने दृष्टिकोण में विस्तार करती हुई यथार्थ से टकराती है। जैसे-

"कितना खौफ़नाक समय है
जब बच्चे इतने ख़तरनाक सवाल पूछते हैं
कि उनका जवाब देने के लिए
हम इस हताश ढंग से
निरुत्तर हो जाते हैं
कि उन्हें पीटने लगते हैं
जबकि हम जानते हैं
किसी को पीटना
मारना
किसी सवाल का जवाब नहीं"[6]

लेकिन फिर भी वय एवं अवस्था में बड़े आदमी अकसर अनिश्चित प्रश्न के सटीक जवाब न देकर बच्चों को पीटते हैं और प्रश्न संस्कृति से बचने का प्रयास करते हैं। वैसे भी-

"बच्चे तो हमेशा
नए-नए सवाल पूछते आए हैं
और भविष्य में भी पूछते जाएँगे"[7]

यह सवाल केवल उत्तर तक ही सीमित नहीं है, बल्कि परिवेश के प्रति जन-जागरुकता का भी संदर्भित बयान है, जहाँ वर्तमान का काल भी दर्ज है और भविष्य की चिंता भी सूचीबद्ध है। यह 'नए-नए सवाल' केवल-

"जैसे
मछलियाँ चश्मे क्यों नहीं पहन लेतीं"[8]

जैसे प्रश्न है, जो सिर्फ अभिधात्मक दृष्टि से स्थूल लगते हैं, लेकिन व्यापक बोध से वह परिवेश के प्रति सजगता का ही सूचक है, जहाँ अब बच्चे- **"वे जानना चाहते हैं**
लोकल बस में
जिस अँकल के प्लास्टिक-डिब्बे में

दो सूखी रोटियाँ
और थोड़ा अचार था
उसकी पुलिस ने तलाशी क्यों ली
पुलिस ने उसे क्यों पीटा"[9]

यह बच्चे अब 'मछलियाँ चश्मे क्यों नहीं पहन लेतीं' जैसे भ्रम एवं वितंडावाद से निवृत्त होकर जीवन के यथार्थ से टकराने के लिए तत्पर रहते हैं, जहाँ 'अँकल' नामक व्यक्ति के माध्यम से निम्नतर जीवन-पद्धति के परिदृश्य की शिनाख्त की गई है, जो 'पुलिस' की भ्रष्ट नीति, तानाशाही एवं अत्याचार से पीड़ित है, वेबस है, लाचार है और क्रूरता से डरे हुए हैं।

मानवतावाद से भाव व संवेदना का परिष्कार होता है और दूसरे के प्रति आत्मीयता एवं करुणा उपजती है, जिसकी वजह से संबंध में मधुरता आती है और स्वस्थ दृष्टिकोण का विकास होने लगता है। ज्ञानेन्द्रपति की **'विज्ञान-शिक्षक से छोटी लड़की का एक सवाल'** कविता वर्गीय विषमता एवं वर्गीकरण के माध्यम से पूँजीवाद एवं एकल प्रभुत्व तथा शक्ति केंद्रीकरण का प्रतिषेध करती है। ईश्वर की संरचना में प्रत्येक मनुष्य समान है और एक ही तरह के अधिकार एवं सुविधा के हकदार है, लेकिन सत्ता-संस्कृति, वित्त-पोषित लोकप्रियतावाद और विश्व ग्राम की उपभोक्ता व उपयोगितावाद की प्रवृत्ति ने मनुष्य से मनुष्य का संबंध भी विच्छेद कर लिया है और मनुष्य से मनुष्य में मूल्य के अवमूल्यन का भी विखंडन कर लिया है, जिसके कारण वर्तमान में समाज वर्ग विषमता के संकट से जूझ रहा है और गरीबी एवं अमीरी की सीमारेखा दो अलग दिशा में प्रसारित होती जा रही है। विज्ञान मनुष्य में सूत्रता व सैद्धांतिक पक्ष का विकास करता है और मानविकी मनुष्य में भाव-संवेग का शुद्ध संचार करता है। इस छोटी लड़की का विज्ञान शिक्षक से किया गया सवाल तर्क के स्तर पर भिन्न है और भाव के स्तर पर अलग है, जहाँ मनुष्य की समानता की बात ही अधिक प्रस्फुटित होती है। जैसे-

"एक बहुत छोटा-सा सवाल पूछा था विज्ञान-कक्षा की सबसे छोटी लड़की ने
पूछा था कि सारे आदमी जब
एक-से ही आदमी हैं
जल पर और स्थल पर एक साथ चलकर ही
बने हैं इतने आदमी
तो एक आदमी अमीर
एक आदमी गरीब क्यों है
एक आदमी तो आदमी है
दूसरा जैसे आदमी ही नहीं है..."[10]

यह 'एक आदमी अमीर' और 'एक आदमी गरीब' की स्थिति ही पूँजीवाद का निकृष्ट नमूना है, जिसने मनुष्य में दूसरे मनुष्य के विरुद्ध वित्त के आधार पर पैंठ बनाई है और दबदबा कायम किया है, जहाँ 'आदमी तो आदमी है' के भाव से नहीं देखा जाता है, बल्कि पहचान, रुतबा एवं शौहरत के स्तर से देखा जाता है। छोटी लड़की का सवाल भी यही है कि 'आदमी तो आदमी है' फिर वह अमीर तथा गरीब कैसे बनता जा रहा है, लेकिन समाजशास्त्र का यह सवाल विज्ञान के शिक्षक के लिए पेचीदा है। वर्ग की असमानता जगजाहिर है, इसलिए विज्ञान के शिक्षक की हालत यह बन चुकी है कि-

"वे एक पल को भयभीत हुए थे
उनका गला रुँध गया था
तभी अपने भीतर उन्होंने वह तड़प महसूस की थी

आदमी के बारे में पढ़ाते हुए
कक्षा को जिसके बारे में उन्होंने
कभी एक शब्द नहीं कहा था।"[11]

यह 'तड़प' केवल प्रश्न के जवाब की नहीं है, बल्कि वर्ग विषमता एवं मानवतावाद की परिधि में मूल्य, भाव, करुणा, आत्मीयता, संवेदना और एक से दूसरे तक जुड़ाव व संपर्क की भी कशिश है।

राजेश जोशी की कई कविताएँ बाल जीवन की मासूमियत एवं निश्छलता के विविध संदर्भ सहजता से दर्ज करती हैं। यह बच्चे समाज से प्रताड़ना झेलते हैं और विवश जीवन जीने पर मजबूर होते हैं। इस विवशता में कुछ जीवन की प्राथमिकताएँ भी होती हैं और कुछ जिम्मेदारियाँ भी होती हैं। **'उनका भरोसा'** कविता बाल मनोविज्ञान का जीवंत दस्तावेज है, जहाँ बच्चों की सामाजिकार्थिक स्थिति का क्रमवार विवेचन है और व्यवस्था की यथार्थ परतें उद्घाटित हैं कि, बच्चे भीख क्यों माँग रहे हैं! बच्चे का भीख माँगना न केवल वर्तमान का वीभत्स यथार्थ है, बल्कि भविष्य का भी स्वप्नहीन आदर्श है, जहाँ लाचारी एवं बेकारी के अलावा कोई भी विल्कप नहीं है। भीख माँगते हुए बच्चों के दृश्य आम जीवन का हिस्सा बन गए हैं, इसलिए अब आम जनता के मन में भी भावुकता व दया की अपेक्षा खीज ही पैदा होती है-

"अपने छोटे-छोटे हाथ फैलाते हैं
गिड़गिड़ाते हैं पेट दिखाते हुए कहते हैं वे कई दिन से भूखे हैं
तुम्हें दयार्द्र कर डालने का लगभग हर हथकंडा अपनाते हैं
इतने अभ्यस्त हो चुके हैं हम इन सारे दृश्यों के
कि बस एक खीज पैदा होती है अक्सर
कभी कभी एक हल्की सी भावुकता भी
हमारी पीठ फेरते ही
अपने ही स्वांग पर जोर जोर से खिलखिलाते हैं
भीख माँगनेवाले बच्चे"[12]

कविता के संदर्भ में नंदकिशोर नवल का विचार है कि, **"ये बच्चे, जो उन्हें कुछ दिए बगैर आगे चला जाता है, उसकी नकल उतारते हैं और जो उन्हें कुछ देता है, उसके पैसे को भी हाथ में लेकर उसका मजाक उड़ाते हैं। तात्पर्य यह कि हमारी क्रूरता और दयालुता दोनों ही उनके लिए एक स्वांग का विषय है। राजेश ने इस घटना के लिए उन भिखमंगे बच्चों को नहीं, बल्कि समाज को ही दोषी ठहराया है।"**[13] इस कविता में बच्चों के भीख माँगने की सामान्य गतिविधि के साथ उनका संघर्ष, दशा और स्थिति पूर्णतः उपस्थित है। बच्चे के पास एक उम्मीद है, जिज्ञासा है, जिजीविषा है और भविष्य का सुनहरा स्वप्न है, लेकिन वर्तमान की दशा भविष्य के यथार्थ को दूषित करने का ही कार्य करती है, बेशक यह भरोसा यथार्थ की क्षमता और स्वप्न की हकीकत में परिवर्तित होता है या नहीं! फिर भी-

"कभी कभी वे एक स्वप्न भी देखते हैं
जिसे हमारे समय की रंगीन आपराधिक फिल्मों ने
रचा है उनके दिमाग में
जिस पर उनका भरोसा है कि उस तरह एक दिन
बदल जाएगा उनका भी जीवन !"[14]

यह 'भरोसा' ही जीवन के लिए प्रेरणा का स्त्रोत है, जिसकी वजह से यह भीख माँगने वाले बच्चे संघर्ष करते हैं और समाज की प्रत्येक गतिविधि से लड़ते हैं, टकराते हैं और अंत में जीत के लिए तत्पर होते हैं। राजेश जोशी की **'बच्चे काम पर जा रहे हैं'** कविता बाल श्रम की विसंगति पर कड़ा प्रहार करती है और समाज की संगीन वास्तविकता

का दर्शन कराती है। जैसे- **"कोहरे से ढकी सड़क पर बच्चे काम पर जा रहे हैं**
सुबह सुबह
बच्चे काम पर जा रहे हैं
हमारे समय की सबसे भयानक पंक्ति है यह
भयानक है इसे विवरण की तरह लिखा जाना
लिखा जाना चाहिए इसे सवाल की तरह
काम पर क्यों जा रहे हैं बच्चे ?"[15]

इस 'काम पर क्यों जा रहे हैं बच्चे ?' के संदर्भ में न तो 'विश्व बाल श्रम निषेध दिवस' की कोई सार्थकता है और न ही 'बाल श्रम (निषेध और विनियमन) अधिनियम, 1986' की प्रासंगिकता है, जिसमें कहा गया है कि 14 वर्ष के कम उम्र के किसी भी बच्चे को किसी भी रोजगार में नियोक्त नहीं किया जा सकता है। 'राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो' की वर्ष 2022 की रिपोर्ट के अनुसार, वर्ष 2021 में बाल श्रम (निषेध और विनियमन) अधिनियम, 1986 के अनुसार लगभग 982 मामले दर्ज किए गए हैं, जिसमें से अधिकतर तेलंगाना में दर्ज हुए हैं और उसके बाद असम का स्थान रहा है। इस तरह के आँकड़े मनुष्य की मानसिकता को भी दर्शाते हैं और भविष्य के प्रति भी चुनौती का काम करते हैं।
इस संसार में जो भी श्रेष्ठ है उसे चंद्रकांत देवताले की कविताएँ अन्याय, शोषण, दमन एवं क्रूरता से बचाने के लिए प्रयासरत हैं और गैर-बराबरी और ऐसे सारे मानव द्रोह की अपने ढंग से यथासंभव शिनाख्त करते हैं उसके विरुद्ध चेतावनी देते हैं और उसका मुकाबला करते हैं, जो सामाजिक जीवन के लिए उपयुक्त नहीं है। चंद्रकांत देवताले की **'थोड़े से बच्चे और बाकी बच्चे'** कविता वर्गभेद एवं असमानता की परिधि का दस्तावेजीकरण है, जहाँ एक तरफ-

"असंख्य बच्चों के लिए
कीचड़-धूल और गन्दगी से पटी
गलियाँ हैं जिनमें वे
अपना भविष्य बीन रहे हैं"[16]

इस 'असंख्य' की भीड़ में न तो वर्तमान का कोई स्वस्थ प्रतिरुप दिखाई देता है और न ही भविष्य का कोई संकेत दिखता है, इसलिए यह बच्चे एक तरफ निम्न समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं और दूसरी तरफ उच्च वित्त-पोषित समाज की पक्षधरता स्वीकार करते हैं। जैसे-

"अखबार के चेहरे पर जिस वक्त
तीन बच्चे आइसक्रीम खाते
हँस रहे हैं
उसी वक्त
बीस पैसे में सामान ढोने के लिए
लुका-छिपी करते बच्चों के पुट्ठों पर
पुलिस वालों की बेंतें उमच रही हैं"[17]

एक ही समाज में दो दिशा की यथादशा का जिक्र हुआ है, जहाँ एक वर्ग के बच्चे जीवन यापन के लिए तमाम तरह के संघर्ष करते हैं परंतु फिर भी आजीविका नहीं कमा पाते हैं और आश्रित या विवश जीवन जीते हैं, वहाँ दूसरे वर्ग के बच्चे शालीन जीवन व्यतीत करते हैं और उपभोक्ता संस्कृति का मुख्य हिस्सा होते हैं तथा बाजार, शहर, नगर, संचार एवं वित्त का अभिन्न अंग होते हैं। वर्ग विषमता ने समाज में दरारें डाल दी हैं और एक से दूसरे का संबंध विच्छेदित कर दिया है, इसलिए-

"ढेर सारे बच्चे
सार्वजनिक दीवारों पर गालियाँ लिख रहे हैं
ढेर सारे बच्चे बीड़ी के अद्धे ढूँढ़ रहे हैं
ढेर सारे बच्चे होटलों में
कप-बसियाँ रगड़ रहे हैं
उनके चेहरे मेमनों की तरह दयनीय हैं
और उनके हाथों और पाँवों की चमड़ी
हाथ और पाँव का साथ छोड़ रही है"[18]

यह 'ढेर सारे बच्चे' समाज का ही हिस्सा है और उन्हें अक्सर परित्यक्त समझा जाता है, इसलिए न तो किसी तरह की उन्हें कोई सुविधा दी जाती है और न ही किसी तरह का कोई अधिकार का लाभ उन्हें मिल पाता है; क्योंकि वह सभ्य समाज एवं शिक्षित पीढ़ी के लिए केवलमात्र अवांछित तत्त्व की ही तरह है, जिससे न तो कोई सरोकार ही है और न ही कोई संबंध है।

सुरेश सेन निशांत की **'बच्चे जा रहे हैं दूर'** कविता आजीविका एवं रोजगार के विकल्प में शहर की तरफ पलायन करते जा रहे हैं, जहाँ गाँव की स्मृति, स्वप्न, संबंध एवं संवेदना पीछे छूटती व छंटती जा रही है और नगरीय बोध मन-मस्तिष्क की चिंतन एवं मंथन करने की सहज वृत्ति व अभिवृत्ति को जर्जर तथा खोखला करता जा रहा है। कविता की बानगी देखिए-

"बच्चे जा रहे हैं दूर
अपना गाँव घर छोड़
बच्चों के पास जरा भी छाँव होती
वे कभी न जाते दूर
तपती धूप में झुलसने के लिए"[19]

यह 'छाँव' प्रमाणिक रूप से बेहतरीन जीवन का संकेत है, जिसकी तलाश में एवं खुद की तराश में जत्थे के जत्थे गाँव से शहर की तरफ पलायन कर रहे हैं और आजीविका के अवसर खोज रहे हैं।

नरेश सक्सेना की **'अच्छे बच्चे'** कविता बच्चे की मार्मिक संवेदना के भाव और बाल श्रम की विकृति का दस्तावेजीकरण करती है। यह कविता एक तरफ संवैधानिक स्थिति दर्शाती है, दूसरी तरफ सामाजिक विडंबना का यथार्थ दिखाती है और तीसरी तरफ बाल समाज के विघटित होते भविष्योन्मुखी जीवन मूल्य की अभिव्यक्ति करती है। कविता का उद्धरण है-

"कुछ बच्चे बहुत अच्छे होते हैं
वे गेंद और ग़ुब्बारे नहीं माँगते
मिठाई नहीं माँगते ज़िद नहीं करते
और मचलते तो हैं ही नहीं
बड़ों का कहना मानते हैं
वे छोटों का भी कहना मानते हैं
इतने अच्छे होते हैं
इतने अच्छे बच्चों की तलाश में रहते हैं हम
और मिलते ही
उन्हें ले आते हैं घर
अक्सर

तीस रुपए महीने और खाने पर।"[20]

निष्कर्ष : भारत देश में बाल श्रम की वृद्धि में गरीबी, बुनियादी आवश्यकता एवं प्राथमिकता की कमी, शिक्षा और गुणवत्तापूर्ण एवं रोजगारपरक शिक्षा पद्धति का अभाव, अवसर की कमी और अनुकूल परिवेश की अनुपयुक्तता जैसे प्रमुख कारण है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 23 और 24 की प्रासंगिकता घटती जा रही है और बाल श्रम (निषेध और विनियमन) अधिनियम, 1986 के प्रावधान भी निष्क्रिय साबित हो रहे हैं। बाल मन में कल्पना एवं कौतूहलता जैसे तत्त्व की भरमार होती है। जैसे कहा जाता है की युवा भविष्य की शक्ति, ताकत एवं सोच का प्रतीक है, वैसे ही बाल जीवन भी वर्तमान एवं भविष्य की अनिवार्य रीढ़ है। समकालीन हिंदी कविता में बाल जीवन का व्यापक चित्रण संवेदना का साथ हुआ है, लेकिन उसे वरीयता क्रम में चिह्नित करना और संदर्भित करना भी आवश्याक है। समकालीन हिंदी कविता में बाल जीवन का शुद्धतम रूप तथा प्रतिरूप चित्रित हुआ है, जिसकी पृष्ठभूमि में समय की तिक्त अनुभूति का अंश विद्यमान है और समाजीकरण के स्तर एवं संबंध में वितीय असंतुलन का पैमाना मौजूद है। निष्कर्षत: कह सकते हैं कि समकालीन हिंदी कविता में बाल श्रम का चित्रांश एवं चित्रावालियाँ बृहत् रूप में उपस्थित हैं, जिसकी संवेदनात्मक मूल्यवत्ता भी है और संभावनात्मक बोधवत्ता भी है।

संदर्भ सूची :

1. मंगलेश डबराल, घर का रास्ता, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1988, पृष्ठ-30.
2. वही.
3. वही, पृष्ठ 31
4. वही.
5. अरुण कमल, अपनी केवल धार, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1980, पृष्ठ-43.
6. कुमार विकल, सम्पूर्ण कविताएँ, आधार प्रकाशन, पंचकूला, 2013, पृष्ठ-169.
7. वही.
8. वही.
9. वही, पृष्ठ-169-170.
10. ज्ञानेन्द्रपति, भिनसार, किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2006, पृष्ठ-42.
11. वही, पृष्ठ-43.
12. राजेश जोशी, दो पंक्तियों के बीच, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 2019, पृष्ठ-28.
13. नंदकिशोर नवल, हिंदी कविता : अभी, बिल्कुल अभी, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 2014, पृष्ठ-96.
14. राजेश जोशी, दो पंक्तियों के बीच, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 2019, पृष्ठ-28;
15. राजेश जोशी, प्रतिनिधि कविताएँ, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2013, पृष्ठ-78-79.
16. चंद्रकांत देवताले, लकड़बग्घा हँस रहा है, वाणी प्रकाशन, 2000, पृष्ठ-78.
17. वही.
18. वही, पृष्ठ-79.
19. सुरेश सेन निशांत, मैं यहीं रहना चाहता हूँ, अंतिका प्रकाशन, उत्तर प्रदेश, 2020, पृष्ठ-106.
20. https://www.hindwi.org/kavita/achchhe-bachche-naresh-saxena-kavita-4

•